



कृषक आन्दोलन तथा वामपंथी संगठन

डॉ० मो० मकसूद आलम
इतिहास विभाग,
वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बिहार बंगाल महाप्रांत का एक पिछड़ा इलाका था। इसके पूर्णरूपेण असमान समाज में छोटे-छोटे जमींदारों तथा धनिक किसानों का दबदबा था। सामाजिक असमानता के कारण संघर्ष की संभावना बढ़ गई थी, किंतु छोटे-छोटे जमीन्दारों तथा धनिक किसानों ने सामाजिक व्यवस्था पर प्रभावकारी नियंत्रण बनाए रखा तथा खुला संघर्ष केवल उनके निर्देश में विकसित हुआ। आम तौर पर बिहारी समाज और विशेषकर उत्तर बिहारी समाज की निष्क्रियता के कारण ब्रिटिश प्रशासन का स्थायित्व बना रहा किन्तु, इसके स्थायित्व पर संकट का बादल मंडराने लगा क्योंकि धीमी कृषक अर्थव्यवस्था में जनसंख्या का दबाव बढ़ रहा था और इससे व्यापक संघर्ष की संभावना बढ़ गई थी।

यह तथ्य हैं कि संपत्ति के असमान वितरण के फलस्वरूप तनाव और संघर्ष की संभावना बढ़ गई किंतु इस असमानता ने निर्भरता के संबंधों को जन्म दिया जिसने समाज को एकता के सूत्र में आबद्ध रखा। धनिक किसानों तथा छोटे-छोटे जमींदारों का अनाज बाजार पर प्रभाव गि, साख की आपूर्ति और वितरण तथा मजदूरों के नियोजन की संभावनाओं, उनकी मजदूरी और कार्यदशाओं पर नियंत्रण था। फलतः निर्धन किसान उसका बाट जोहते रहते थे। मध्यवर्गीय किसानों के पास जीविकोपार्जन के लिए काफी जमीन थी, वे काफी स्वतंत्र थे फिर भी वे

समाज के उच्च वर्ग द्वारा संचालित साख और अनाज व्यापार के जाल में फंस जाते थे।

बिहार की जनसंख्या भी तेजी से बढ़ रही थी। किंतु इसकी अर्थव्यवस्था में जड़ता बनी रही। इस स्थिति ने राजनीतिक मतभेद को पैदा किया जो 1917 से 1942 ई. तक बनी रही। इसका प्रभाव भूमि के उपभोग और वितरण के विवादों तथा विरोधाभासों में स्पष्ट दिखाई पड़ा। जनसंख्या की वृद्धि ने तनाव और विरोध को और भी बढ़ा दिया जिस पर राष्ट्रीय आंदोलन आश्रित था। राष्ट्रीय अभिप्रचारक आर्थिक विकास का अभाव ब्रिटिश सरकार का कुप्रबंधन मानते थे।

1917 और 1923 ई. के बीच जन अशांति की पहली लहर दिखलाई पड़ती हैं। इसका प्रधान कारण ऊँची कीमतें और दुर्लभता हैं। युद्ध के कारण दैनिक उपयोग में आनेवाली वस्तुओं के दाम बढ़ गये थे। लगातार कई वर्षों तक मॉनसून की अनिश्चितता से अनाज की आपूर्ति कम हो गई थी और दाम बढ़ गया था। ऊँची कीमतें और दुर्लभता 1915, 1919 और 1920 के दशक तक बनी रहीं।

ऐसी स्थिति में निर्धन किसानों को बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। मजदूरी कम थी किंतु मजदूरों को खाद्य पदार्थों के लिए अधिक दाम देना पड़ता था। सौभाग्यवश उन्हें आंशिक मजदूरी जिन्स के रूप में मिलती थी। भंडारण सुविधा के अभाव में बटाईदार अपनी उपज का अधिकांश भाग फसल काल में ही कम दाम पर बेच देते थे और वर्ष के बाद के महीनों में ऊँची कीमतों पर खाद्य-पदार्थ खरीदते थे।

मध्यवर्गीय किसानों पर ऊँची कीमतों और दुर्लभता का कोई खास असर नहीं पड़ता था। वे अपने कुछ खेतों में वाणिज्य फसलें उगाते थे जिन्हें

बेचकर वे अपने दैनिक उपयोग की वस्तुएँ खरीदने और माल गुजारी देते थे। वे अपनी शेष जमीन में खाद्यान्न उपजाते थे जिससे उनके परिवार का भरण-पोषण होता था। फसल मारे जाने पर उन्हें भी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। किंतु, चूँकि उन्हें भंडारण की सुविधा नहीं थी वे अपनी फसल को कटनी काल में कम कीमत पर बेच देते थे। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि दुर्लभता और कीमत का मध्यवर्गीय किसान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। वस्तुतः उनमें से कुछ को परेशानी उठानी पड़ती थी और कुछ लाभान्वित भी होते थे।

किंतु उच्चवर्गीय किसानों को ऊँची कीमतों से अधिक लाभ होता था। धनिक किसान और छोटे-छोटे जमींदार अनाज विंची कीमतों से अधिक लाभ होता था। धनिक किसान और छोटे-छोटे जमींदार अनाज विक्रेता के रूप में काफी मुनाफा कमाते थे। वे कटनी के समय कम कीमत पर अनाज खरीद लेते थे अनाज की दुर्लभता के समय ऊँची कीमतों पर बेचते थे। फिर भी गाँव के संप्रान्त वर्ग के ये लोग जन आंदोलनों में भाग लेते थे। अतएव, 1917 से 1923 ई. के बीच जन आंदोलन की पृष्ठभूमि तथा परवर्तीकाल में वामपंथियों द्वारा संप्रान्त और किसानों के राजनीतिक संघटन की चेष्टाओं का विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है।

बागवान मालिक विरोधी आंदोलन 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तर बिहार में यूरोपीय बागवान मालिक आए। वे उत्तर बिहार की उर्वरा, भूमि सस्ते मजदूर तथा जल आपूर्ति की अधिकता से आकर्षित हुए। उन्होंने नील की खेती करना शुरू किया। शताब्दी के दूसरे भाग में नील उद्योग का विस्तार हुआ। कारण 1857 ई. के महान विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासन को प्रोत्साहन देना था। यह नील उत्पादक क्षेत्रों में यूरोपीय प्रभाव की वृद्धि से संभव था। 1859-61 ई. के

बीच बंगाल में “नीले विद्रोह” के कारण भी बिहार में प्रशासन को और भी चुस्त कर दिया गया।

चम्पारण में बागवान मालिक जम गए। 1901 ई. तक चंपारण में बागवान मालिक, उनके परिवार और यूरोपीय सहायकों की संख्या 200 हो गई। बागवान समुदाय के अन्य 200 से 300 सदस्य उत्तर बिहार में फैले हुए थे।

बिहार में यूरोपीय बागवान मालिकों ने भूमि पर नियंत्रण स्थापित कर अपना काम करना शुरू किया। कभी-कभी वे जमींदारी अधिकार खरीद लेते थे, किन्तु आम तौर पर वे रेहनदारों के रूप में जमींदारी अधिकारों का उपयोग करते थे। प्रायः सभी नील जो उनके कारखानों में साफ किए जाते थे, किसानों द्वारा उपजाए जाते थे। कभी-कभी नजदीक के नील कारखाने में बेचने के लिए नील उपजाते थे। किंतु सामान्यतः बागवान मालिकों का रैयत की जमीन पर मालिकाना हक होने के कारण वे रैयतों को प्रत्येक बीघा का बीस कठ्ठे में तीन कठ्ठा में नील की खेती करने के लिए विवश करते थे। इसे तीन कठिया कहा जाता था। दो या तीन फसलों के बाद भूमि की उत्पादकता जब घट जाती थी तो बागवान मालिक रैयत के दूसरे खेत को नील उत्पादन के लिए चुन लेता था। बागवान मालिक रैयतों द्वारा अपनी भूमि के सर्वोत्तम भाग को सुरक्षित रखने के लिए उनकी नील फसल को खरीद लेने और माल गुजारी में वृद्धि नहीं करने का आश्वासन देते थे।

प्रारम्भ में तो बागवान मालिक और रैयतों के बीच संबंध अच्छे थे। फिर भी संघर्ष का असली कारण यूरोपीय उद्यमियों और किसानों के बीच था। यूरोपीय उद्यमी नील का वृहत्त पैमाने पर उत्पादन कर अधिकाधिक मुनाफा कमाना चाहते थे। किसान इस तरह का कोई जोखिम उठाना नहीं चाहते थे। किसान

नील की अपेक्षा का चावल का उत्पादन करना श्रेयस्कर समझते थे, क्योंकि मंदी के समय नील तो खाया नहीं जा सकता था। साथ ही नील उत्पादन में सघन श्रम की आवश्यकता होती थी, पूँजी अधिक लगती थी तथा इसमें जोखिम भी रहता था। चूँकि इसका उत्पादन लघु पैमाने पर संभव था, किसान नील की खेती करना पसंद नहीं करते थे। इस अनिच्छा, उत्पादन में अधिक व्यय आदि के कारण नील की खेती को लाभप्रद नहीं समझा जाता था। अतएव, बागान मालिकों ने अतिरिक्त आर्थिक दबावों का सहारा लिया तथा किसानों को नील की खेती करने के लिए विवश किया। बागवान मालिकों ने उत्तर बिहार की कृषिक अव्यवस्था में आधुनिक शक्ति के रूप में काम करने की अपेक्षा पारम्परिक प्रतिमानों को अपनाया तथा स्थापित संस्थाओं के अधीन काम किया। फिशर के अनुसार “नील उद्योग ने कृषक जीवकोपार्जन अर्थव्यवस्था में तनाव पैदा किया किंतु किसी अतिशय परिवर्तन को जन्म नहीं दिया। तनावों में नील उत्पादन के प्रति किसानों में विरक्ता की भावना उत्पन्न की।”

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डी. जी. तेंदुकर, गांधी इन चंपारण, पृ. 18।
2. हाजर, बिहार किसान सभा, पृ. 73।
3. फिलगेट, बिहार प्लान्टर्स एसोशिएसन, पृ. 10।
4. स्वामी सहजानन्द सरस्वती, किसान कैसे लड़ते हैं, पृ. 382।
5. बी. बी. मिश्र (संपादक) सेलेक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑफ महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारण, 1917–18, पृ. 8।
6. अनुग्रह नारायण सिंह, मेरे संस्करण, पृ. 86–88।

7. के. के. दत्त, हिस्ट्री ऑफ मूवमेंट इन बिहार।